# जैनागम : पर्यावरण संरक्षण

❑ श्री कन्हैयालाल लोढ़ा

**जैन-आगमों में षट्काय के हनन का साधकों को त्रिकरण-त्रियोग से निषेध इसलिए किया गया है कि प्राकृतिक सन्तुलन बना रहे एवं पर्यावरण में विकृति न आये। व्रतों/अणुव्रतों की संरचना का भी यही उद्देश्य था। एक पूर्ण पर्यावरण की साधना है तो दूसरी आंशिक साधना। पर्यावरण-प्रदूषण का संबंध प्रकृति से ही नहीं है अपितु आत्मिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक, आर्थिक जगत् भी प्रदूषण की परिधि में आते हैं । इसी को विश्लेषित कर रहे हैं – श्री कन्हैयालालजी लोढ़ा।**

**– सम्पादक**

**पर्यावरण** शब्द परि उपसर्ग पूर्वक आवरण से बना है। जिसका अर्थ है जो चारों ओर से आवृत्त किए हो, चारों ओर छाया हुआ हो, चारों ओर से घेरे हुए हो। पर्यावरण शब्द का अन्य समानार्थक शब्द है – वातावरण। वातावरण का शाब्दिक अर्थ वायुमंडल होता है परन्तु वर्तमान में वातावरण शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है, जिसे कहा जाता है कि व्यक्ति जैसे वातावरण में रहता है उसके वैसे ही भले-बुरे संस्कार पड़ते हैं। इस रूप में पर्यावरण शब्द भारत के प्राचीन धर्मों में वातावरण अर्थात् मानव जीवन से संबंधित सभी क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है। पर्यावरण दो प्रकार का होता है – परिशुद्ध, अशुद्ध। जो पर्यावरण जीवन के लिये हितकर होता है वह परिशुद्ध पर्यावरण है और जो पर्यावरण जीवन के लिये अहितकर होता है वह अशुद्ध पर्यावरण है। इसी अशुद्ध पर्यावरण को प्रदूषण कहते हैं।

पाश्चात्य देशों में प्रदूषण का सूचक प्राकृतिक प्रदूषण है। परन्तु भारतीय धर्मों में विशेषतः **जैन धर्म में पर्यावरण प्रदूषण केवल प्रकृति तक ही सीमित नहीं है प्रत्युत आत्मिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक, आर्थिक आदि जीवन से संबंधित समस्त क्षेत्र इसकी परिधि में आते हैं। जीवन संबंधित ये सभी क्षेत्र परस्पर जुड़े हुए हैं। इनमें से किसी भी एक क्षेत्र में उत्पन्न हुए प्रदूषण का प्रभाव अन्य सभी क्षेत्रों पर पड़ता है। जैन धर्म में प्रदूषण, दोष, पाप, विकार, विभाव, एकार्थक शब्द हैं। जैन धर्म सभी क्षेत्रों के प्रदूषणों का मूल कारण आत्मिक प्रदूषण को मानता है शेष सभी प्रदूषण इसी प्रदूषण के कटु फल, फूल, पत्ते व कांटे हैं। अतः जैनधर्म मूल प्रदूषण को दूर करने पर जोर देता है** और इस प्रदूषण के मिटने पर ही अन्य प्रदूषण मिटाना संभव मानता है, जबकि अन्य संस्थाएँ, सरकारें, राजनेता प्राकृतिक प्रदूषण को मिटाने पर जोर देते हैं। परन्तु उनके इस प्रयत्न से प्रदूषण मिट नहीं पा रहा है। एक रूप से मिटने लगता है तो दूसरे रूप में फूट पड़ता है, केवल रूपान्तर मात्र होता है जबकि जैन वाङ्गमय में प्रतिपादित सूत्रों से सभी प्रदूषण समूल रूप से नष्ट होते हैं। इसी विषय का अति संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है।

ऊपर कह आए हैं कि समस्त प्रदूषणों का मूल कारण है – आत्मिक प्रदूषण अर्थात् आत्मिक विकार। आत्मिक विकार है – हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार आदि अगण्य पाप। इन सब पापों की जड़ है विषय-कषाय से मिलने वाले सुखों के भोग की आसक्ति। भोगों की पूर्ति के लिये भोग सामग्री व सुविधा चाहिये। भोगजन्य, सुख सामग्री व सुविधा प्राप्ति के लिये धन-सम्पत्ति चाहिये। धन प्राप्त करने के लिये लोभ से ही मानव हिंसा, झूठ, चोरी,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संग्रह, परिग्रह, शोषण करता है, स्वास्थ्य के लिये हानि कारक वस्तुओं का उत्पादन करता है, असली वस्तुओं में हानिप्रद नकली वस्तुएँ मिलाता है कई प्रकार के प्रदूषणों को जन्म देता है। वर्तमान में विश्व में जितने भी प्रदूषण दिखाई देते हैं इन सबके मूल में भोग लिप्सा व लोभ वृत्ति ही मुख्य है।

जब तक जीवन में भोग-वृत्ति की प्रधानता रहेगी तब तक भोग सामग्री प्राप्त करने के लिये लोभ वृत्ति भी रहेगी। कहा भी है कि **लोभ पाप का बाप है** अर्थात् **जहाँ लोभ होता है वहाँ पाप की उत्पत्ति होगी ही। पाप प्रदूषण पैदा करेगा ही। अतः प्रदूषण के अभिशाप से बचना है तो पापों से बचना ही होगा, पापों को त्यागना ही होगा। पापों का त्याग ही जैन धर्म की समस्त साधनाओं का आधार व सार है। पापों से मुक्ति को ही जैन धर्म में मुक्ति कहा है। अतः जैन धर्म की समस्त साधनाएँ, प्रदूषणों (दोषों) को दूर करने की साधना है।** जैन धर्म में अनगार एवं आगार ये दो प्रकार के धर्म कहे हैं। अनगार धर्म के धारण करने वाले साधू होते हैं जो पापों के पूर्ण त्याग की साधना करते हैं। आगार धर्म के धारण करने वाले गृहस्थ होते हैं उनके लिये बारह व्रत धारण करने, तपस्या, कुव्यसनों के त्याग का विधान किया गया है। यही आगार धर्म प्रदूषणों से बचने का उपाय है। इसी परिपेक्ष्य में यहाँ बारह व्रतों का विवेचन किया ज रहा है:-

### (१) स्थूल प्राणातिपात का त्याग

प्राणातिपात उसे कहा जाता है जिससे किसी भी प्राणी के प्राणों का घात हो। प्राण दश कहे गये हैं। श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण २. चक्षु इन्द्रिय बल प्राण ३. घ्राणेन्द्रिय बल प्राण ४. रसनेन्द्रिय बल प्राण ५. स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण ६. मन बल प्राण ७. वचन बल प्राण ८. कायबल प्राण ९. श्वासोश्वास बल प्राण और १०. आयुष्य बल प्राण। इन दस प्राणों में से किसी भी प्राण को आघात लगे, हानि पहुँचे वह प्राणातिपात है। वह प्राणातिपात प्राणी का ही अर्थात् चेतना का ही होता है निष्प्राण अचेतन का नहीं। क्योंकि अचेतन (जड़) जगत् पर प्राकृतिक प्रदूषण या अन्य किसी भी प्रकार का प्रदूषण का कोई भला-बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है न ही उसे सुख-दुख होता है। अतः प्रदूषण का संबंध प्राणी से ही है। इस प्रकार के प्रदूषण से प्राणी के ही प्राणों का अतिपात होता है। प्राणातिपात को वर्तमान में प्रदूषण कहा जाता है अतः प्रत्येक प्रकार का प्रदूषण प्राणातिपात है, प्राणातिपात से बचना प्रदूषण से बचना है, प्रदूषण से बचना प्राणातिपात से बचना है।

जैन धर्म में समस्त पापों का, दोषों का प्रदूषणों का मूल प्राणातिपात को ही माना है। अब यह प्रश्न पैदा होता है कि प्राणी प्राणातिपात या प्रदूषण क्यों करता है? उत्तर में कहना होगा कि प्राणी को शरीर मिला है इससे उसे चलना, फिरना, बोलना, खाना, पीना, मल विर्सजन आदि कार्य व क्रियाएँ करनी होती हैं परन्तु इन सब क्रियाओं से प्रकृति का सहज रूप में उपयोग करे तो न तो प्रकृति को हानि पहुँचती है और न प्राण शक्ति का ह्रास होता है इससे प्राणी का जीवन तथा प्रकृति का संतुलन बना रहता है। यही कारण है कि लाखों-करोड़ों वर्षों से इस पृथ्वी पर पशु-पक्षी, मनुष्य आदि प्राणी रहते आए हैं परन्तु प्रकृति का संतुलन बराबर बना रहा। पर जब प्राणी के जीवन का लक्ष्य सहज प्राकृतिक/स्वाभाविक जीवन से हटकर भोग भोगना हो जाता है तो वह भोग के सुख के वशीभूत हो अपने हित-अहित को, कर्तव्य-अकर्तव्य को भूल जाता है। वह भोग के वशीभूत हो वह कार्य भी करने लगता है जिसमें उसका स्वयं का ही अहित हो। उदाहरणार्थ - **किसी भी मनुष्य से कहा जाय कि तुम्हारी आँखों का मूल्य पाँच लाख रुपये देते हैं तुम अपनी दोनों आँखों को हमें बेच दो तो कोई भी आँखें बेचने को तैयार नहीं होगा। अर्थात् वह अपनी आँखों को**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी भी मूल्य पर बेचने को तैयार नहीं होगा, वह आँखों को अमूल्य मानता है। परन्तु वही मनुष्य चक्षु इन्द्रिय के सुख भोग के वशीभूत हो टेलीविजन, सिनेमा, आदि अधिक समय देखकर अपनी आँखों की शक्ति क्षीण कर देता है, वह अपनी आँखों की अमूल्य प्राण शक्ति को हानि पहुँचा कर अपना ही अहित कर लेता है। यही बात कान, जीभ आदि समस्त इन्द्रिय के प्राणों के प्राणातिपात पर होती है। जैन धर्म में पृथ्वी, पानी, हवा तथा वनस्पति में जीव माना है, इन्हें प्राण माना है, इन्हें विकृत करने को इनका प्राणातिपात माना है परन्तु मनुष्य अपने सुख-सुविधा संपत्ति के लोभ से इनका प्राण हरण कर इन्हें निर्जीव, निष्प्राण प्रदूषित कर रहा है यथा –

## पृथ्वीकाय का प्राणातिपात-प्रदूषण

कृषि भूमि में रासायनिक खाद एवं एन्टीवायोटिक दवाएँ डालकर भूमि को निर्जीव बनाया जा रहा है जिससे उसकी उर्वरा शक्ति/प्राणशक्ति नष्ट होती है। परिणाम स्वरूप भूमि बंजर हो जाती है फिर उसमें कुछ भी पैदा नहीं होता है।

भूमि का दोहन करके खाने खोदकर, खनिज पदार्थ, लोह, तांबा, कोयला, पत्थर आदि प्रति वर्ष करोडों टन निकाला जा रहा है उसे निर्जीव बनाया जा रहा है तथा उसे कौड़ियों के भाव विदेशों को – अपने देश में उपभोग की वस्तुएँ प्राप्त करने के लिये विदेशी मुद्रा अर्जन करने के लिये बेचा जा रहा है। भले ही इस भूमि दोहन से भावी पीढ़ियों के लिये वह खनिज पदार्थ न बचे कारण कि खनिज पदार्थ नये निर्माण नहीं हो रहे हैं। और भावी पीढ़ियाँ इन पदार्थों के लिये तरस-तरस के मरें, अपने पूर्वजों के इस दुष्कर्म का फल अत्यन्त दुखी होकर भोगें। इस बात की चिन्ता वर्तमान पीढ़ी व सरकारों को कतई नहीं है। यही बात पैट्रोलियम पदार्थों पर भी घटित होती है उसका भी इसी प्रकार भयंकर दोहन हो रहा है। आज विश्व में पचास करोड़ कारें, लाखों दुपहिये वाहन, करोड़ों कारखानों में अरबों टन पैट्रोल जलाया जा रहा है, जिससे पेट्रोल के भंडार खाली होते जा रहे हैं इससे एकदिन भावी पीढ़ियों के लिए कुछ भी नहीं बचेगा। इस प्रकार पेट्रोल तथा लोहा आदि धातुओं का दोहन तथा इनसे पैदा होने वाला जल-वायु प्रदूषण व तापमान वृद्धि का दुष्प्रभाव – ये सब भावी पीढ़ियों के लिए अभिशाप बनने वाले हैं।

## अप्काय का प्राणातिपात प्रदूषण

जल में अन्य पदार्थ मिलने से अप्काय के प्राण का हरण होता है यही जल प्रदूषण है, वर्तमान काल में धन कमाने के लिये बड़े-बड़े कारखानें लगे हैं, उनमें प्रतिदिन करोड़ों अरबों लीटर जल का उपयोग होता है वह सब जल प्रदूषित हो जाता है, रसायनिक पदार्थों के संपर्क से, नगर के गंदे नालों का जल मल-मूत्र आदि गंदगी से दूषित होता जा रहा है। यह दूषित जल धरती में उतर कर कुँओं के जल को तथा नदी में गिरकर नदी के जल को दूषित करता जा रहा है। तथा दूषित जल के कीटाणुओं का नाश करने के लिये पीने के पानी की टंकियों में पोटिशियम परमेगनेट मिलाया जा रहा है जो स्वास्थ्य के लिये अहितकर है। नलों से भी जल का बहुत अपव्यय होता है। यह सब जल का प्रदूषण ही है। जैन धर्म में एक बूंद जल भी व्यर्थ ढ़ोलना पाप तथा बुरा माना गया है। अतः धर्म के सिद्धान्तों का पालन किया जाय तो जल के प्रदूषण से पूरा बचा जा सकता है।

## वायुकाय का प्राणातिपात-प्रदूषण

वायु में विकृत तत्व मिलने से वायु काय के प्राणों का अतिपात होना है। यही वायु प्रदूषण है। बड़े कारखानों की चिमनियों से लगातार विषैला धुआं निकल कर वायु को दूषित करता जा रहा है, करोड़ों, कारखानों में विषैली गैसों का उपयोग हो रहा है वे गैस वायु में मिलकर वायु



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में निहित प्राणशक्ति को क्षय कर रही है। इस प्रदूषण के प्रभाव से ध्रुवों में ओजोन परत भी क्षीण हो गई है उसमें छेद होते जा रहे हैं जिसमें सूर्य की हानिकारक किरणें सीधे मानव शरीर पर पड़ेगी जिसके फलस्वरूप केंसर आदि भयंकर असंख्य असाध्य रोगों का खतरा उत्पन्न हो जाने वाला है। वायु प्रदूषण से नगरों में नागरिकों को श्वास लेने के लिये स्वच्छ वायु मिलना कठिन हो गया है दम घुटने लगा है, जिससे दमा/क्षय आदि रोग भयंकर रूप में फैलने लगे हैं। जैन धर्म में इस प्रकार के वायु के प्राणातिपात को, प्रदूषण को पाप माना है।

### वनस्पति काय प्राणातिपात-प्रदूषण

जैनागम आचारांग सूत्र के प्रथम अध्ययन में वनस्पति की मलीनता की तुलना मनुष्य जीवन से की है जैसे मनुष्य का शरीर बढ़ता है, खाता है उसी प्रकार वनस्पति भी बढ़ती है, भोजन करती है। वर्तमान में वनस्पतिकाय का प्राणातिपात भयंकर रूप से हो रहा है। लकड़ी के प्रलोभन से जंगल/वन कटे जा रहे हैं। पहले जहाँ पहाड़ों पर व समतल भूमि पर घने जंगल थे, जिनमें होकर पार होना कठिन था, जिन्हें अटवी कहा जाता था उनका तो आज नामोनिशां ही नहीं रहा। जो जंगल बचे हैं और जिन वनों को सरकार द्वारा सुरक्षित घोषित किये गये हैं उन वनों में भी चोरी छिपे भयंकर कटाई हो रही है। इसका प्रभाव जल-वायु पर पड़ा है। इनके कट जाने से आर्द्रता कम हो गई जिससे वर्षा में बहुत कमी हो गई है। वन के घने जंगलों में लगे वृक्ष प्रदूषित वायु का कार्बन डाई आक्साईड ग्रहण कर बदले में आक्सीजन देकर वायु को शुद्ध करते थे वह शुद्धिकरण की प्रक्रिया अति धीमी हो गई है। फलतः वायु में प्रदूषण बढ़ता जा रहा है जो मानव जाति के स्वास्थ्य के लिये अति हानिकारक है।

रासायनिक खाद एवं कीट नाशक दवाईयों के डालने से कृषि उपज में अनाज, फल, फूल, दालों की संरचना में उनका दूषित प्रभाव बढ़ता जा रहा है जो स्वास्थ्य के लिये अति हानिकारक है एवं पोष्टिक तत्व का, विटामिन, प्रोटीन, क्लोरी का भी घातक है। यही कारण है कि अमरीका में रासायनिक खाद से उत्पन्न हुए गेहूँ के भाव से बिना रासायनिक खाद में उत्पन्न हुए गेहूँ का भाव आठ गुना है।

### त्रसकाय प्राणातिपात

दो इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव तथा केंचुए, चींटि, मधुमक्खी भौंरे, चूहे, सर्प, पक्षी, पशु आदि चलने फिरनेवाले जीव त्रसकाय कहे जाते हैं। इन जीवों की उत्पत्ति प्रकृति से स्वतः होती है तथा संतुलन भी बना रहता है। ये सभी जीव फसल का संतुलन बनाये रखने में सहायक होते हैं। केंचुआ भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाता है। आज दवाईयों से इन जीवों को मार दिया जाता है जिससे पैदावार में असंतुलन हो गया है तथा जीवों की अनेक प्रजातियाँ लुप्त हो गई है।

जैन धर्म में उपर्युक्त सब प्रकार के जीवों के प्राणातिपात करने रूप प्रदूषणों के त्याग का विधान किया गया है। यदि इस व्रत का पालन किया जाय और पृथ्वी, जल, वायु, वनस्पति आदि को प्रदूषित न किया जाय, इनका हनन न किया तो मानव जाति प्राकृतिक प्रदूषणों से सहज ही बच सकती है। फिर पर्यावरण के लिए तो किसी भी कानून बनाने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी इस प्रकार से अहिंसा पालन से पर्यावरण की समस्त समस्याओं का समाधान संभव है।

### २. मृषावाद विरमण

दूसरा व्रत है – झूठ का त्याग। अर्थात् जो वस्तु जिस गुण, धर्म वाली है उसे वैसी ही बताया जाय। आज चारों ओर व्यापार में मृषावाद का ही बोलबाला है। उदाहरण के लिये रासायनिक खाद दीर्घ काल की उपज



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की खेतों की उर्वरा शक्ति को नष्ट करने वाला है तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है, उसकी इन बुराईयों को छिपाकर उसे खेती के लिये लाभ प्रद बताया जाता है। इसी प्रकार सिन्थेटिक सूत्र के वस्त्र स्वाथ्य के लिये अति हानिकर है उनकी इस यर्थाथता को छिपाया जाता है और उनके लाभ के गुण गाये जाते हैं। एन्टीवायोटिक दवाईयों से शरीर की प्रति रक्षात्मक शक्ति का भयंकर ह्रास होता है जिसमें वृद्धावस्था में रोगों से प्रतिरोध करने की शक्ति नहीं रहती है। इस तथ्य को छिपाया जाता है और धड़ल्ले से विज्ञापन द्वारा इसके लाभप्रद होने का प्रचार किया जाता है। आज का विज्ञापन दाता क्षेत्र में विज्ञापित वस्तु से दीर्घ काल में होने वाली भयंकर हानि को छुपाकर, तथा उनके तात्कालिक लाभ को बढ़ा-चढ़ा कर, बताकर जनता को मायाजाल में फंसाता है यह धोखा है। जैन साधना में ऐसे कार्य को मृषावाद कहा है और इसका निषेध किया गया है। इस सिद्धान्त को अपना लिया जाय तो ऐसे प्रदूषणों से बचा जा सकता है।

### ३. अचौर्य व्रत

अपहरण करना चोरी है। वर्तमान में अपहरण के नये-नये रूप निकल गये हैं। व्यापार द्वारा उपभोक्ताओं के धन का अपहरण तो किया ही जाता है; कंल-कारखानों में श्रमिकों को श्रम का पूरा प्रतिफल न देकर श्रम का भी अपहरण किया जाता है। उनकी विवशता का लाभ उठाया जाता है। जीवनरक्षक दवाईयों के बीस-तीस गुणें दाम रखकर तथा नकली दवाइयाँ बनाकर रोगियों को मृत्यु के मुख में धकेला जाता है। लाटरी के द्वारा गरीबों के कठिन श्रम से की गई कमाई का अपहरण किया जा रहा है। संक्षेप में कहे तो -- **जितने भी शोषण के तरीके हैं वे सभी अपहरण के रूप हैं। बिना प्रतिफल दिये या कम प्रतिफल देकर अधिक लाभ उठाना शोषण या अपहरण है। यह अति भयंकर आर्थिक प्रदूषण है। इसी से आर्थिक विषमता उत्पन्न होती है। दूसरे गरीब अधिक गरीब और धनवान अधिक धनवान होते जा रहे हैं। इस विषमता से ही आज आर्थिक जगत् में भयंकर प्रतिद्वन्द्व व संघर्ष चल रहा है। युद्ध का भी प्रमुख कारण यह आर्थिक शोषण व प्रतिद्वन्द्वता की होड़ ही है। जैन धर्म में अपहरण व संघर्ष शोषण का त्याग प्रत्येक मानव के लिये आवश्यक बताया है ताकि पर्यावरण संतुलित रहे।** यदि इस व्रत का पालन किया जाय तो भूखमरी, गरीबी, आर्थिक लूट अकाल मृत्यु, युद्ध आदि प्रदूणों का अंत हो जाय।

### ४. व्यभिचार का त्याग

चौथे व्रत में अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य समस्त प्रकार के यौन संबंधों को त्याज्य कहा है। जैन धर्मानुयायियों के लिये परस्त्रीगमन, वेश्यागमन तथा अतिभोग को सर्वथा त्याज्य कहा गया है। इससे एड्स जैसे असाध्य बीमार रोगों से सहज ही बचा जा सकता है। **आज जो एड्स तथा यौन संबंधी अनेक रोग व प्रदूषण बड़ी तेजी से फैल रहे हैं जिससे मानव जाति के विनाश का खतरा उत्पन्न हो गया है इसका कारण इस व्रत का पालन न करना ही है। कामोत्तेजक तथा अश्लील चित्र बनाना व देखना भी इस व्रत के अंग है। इससे आज विदेशों में अविवाहित लड़कियों के गर्भ रहने, गर्भपात कराने तथा तलाक आदि घटनाओं में वृद्धि हो रही है। ब्यूटी पार्लर, प्रसाधन सामग्री से शारीरिक अस्वस्थता बढ़ती जा रही है। इन भयंकर प्रदूषण से बचाव भी इस व्रत के पालन करने से ही संभव है।**

### ५. परिग्रह परिमाण व्रत

गृहस्थ को भूमि, भवन, खेत, वस्तु, धन-धान्य, गाय, भैंस आदि की आवश्यकता पड़ती है। अतः इन्हें अपने परिवार की आवश्यकता के अनुसार रखना, इनसे अधिक धन उपार्जन की दृष्टि से न रखना, इस व्रत के अन्तर्गत आता है। इस व्रत में परिग्रह या संग्रह को बुरा



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बताया गया है। उत्पादन को बुरा नहीं कहा है। आनन्द कामदेव आदि आदर्श श्रावकों के हजारों गायें थी उनका परिमाण किया है, बेचा नहीं है। परिमाण की गई गायों के बछड़े-बछड़ी होते, ये परिमाण में अधिक हो जाते ; वे दूसरों को दान दे दिये ; जिससे वे उनका पालन पोषण कर आजीविका चलाते। कोई भोजन करना तो उपादेय माने और अन्न उत्पादन को हेय (बुरा) माने, यह घोर विसंगति है। अतः उत्पादन सर्व हितकारी प्रवृत्ति से करना अपने सुख-सुविधा के लिये उसका संग्रह न करना ही इस व्रत का मुख्य उद्देश्य है। इस व्रत के पालन से उदारता-सेवा-परोपकार की श्रेष्ठवृत्ति का विकास होता है। सेठ व श्रेष्ठ कहा ही उसे है – जो अपने धन का उपयोग दूसरों की सेवा में करे। इस व्रत का पालन किया जाय तो विश्व की गरीबी दूर हो जाय। आर्थिक शोषण का अन्त हो जाय और जीवन के लिये आवश्यक अन्न, वस्त्र, मकान आदि की कमी न रहे। **आज जो आर्थिक जगत में होड़ लगी है - संघर्ष हो रहा है उसका कारण परिग्रह ही है। इस आर्थिक बुराई या प्रदूषण से बचने का उपाय है – परिग्रह परिमाण व्रत।** इस प्रकार व्रत के पालन से पर्यावरण का स्वयमेव शुद्धिकरण हो जाता है।

### ६. दिशा-परिमाण व्रत

धन कमाने तथा विषय सुख भोगने के लिये मनुष्य देश-देशान्तरों का भ्रमण करता है। यह भ्रमण वित्त भोग परिग्रह-लोक एषणा का व भोग वृद्धि का हेतु होता है। ऐसे भ्रमण को जैन धर्म में मानव जीवन के लक्ष्य शान्ति, मुक्ति, स्वाधीनता तथा परमानन्द प्राप्ति में बाधक माना है और इससे यथा संभव बचने के लिये इसकी मर्यादा करने का विधान किया गया है। वर्तमान में लोग धन कमाने, सुख-सुविधा प्राप्ति एवं अधिकाधिक भोग भोगने के लिये अपनी जन्मभूमि को छोड़कर शहरों की ओर दौड़ रहे हैं। फलस्वरूप एक ही शहर में लाखों, करोड़ों लोगों की भीड़ इकट्ठी होती जा रही है। उन लोगों के यांत्रिक लाखों वाहनों तथा उद्योगों में लगे यंत्रों से निकली विषैली गैसों से उनके मल-मूत्र से, उनके द्वारा फैंके हुए कूड़े कचरे से, उनके श्वास से निकली कार्बन-डाई आक्साईड़ से भयंकर प्रदूषण फैलता जा रहा है। भारत में दिल्ली, कलकत्ता, कानपुर आदि शहर इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है। जहाँ श्वास लेने के लिये शुद्ध वायु मिलना कठिन हो गया है जिससे दमा, क्षय, हृदय, केंसर जैसी भयंकर बीमारियाँ बड़ी तीव्र गति से फैलती जा रही है। यदि दिशा पारिमाण व्रत का पालन किया जाय अर्थात् अपने गाँव में रहकर स्वास्थ्य प्रदायक, सादा, सहज, स्वाभाविक, प्राकृतिक जीवन जिया जाय तो बड़े-बड़े नगरों में उत्पन्न होने वाले समस्त प्रदूषणों एवं दूषित पर्यावरण संबंधी समस्या से सहज ही में बचा जा सकता है।

### ७. उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत

इस व्रत में फल-फूल, वस्त्र, विलेपन, खान-पान आदि समस्त उपभोग-परिभोग सामग्री की मर्यादा करने का विधान है। क्योंकि भोग-परिभोग ही आत्मिक दोषों, मानसिक द्वन्द्वों रूप प्रदूषणों के कारण हैं। अतः जैन धर्म में साधुओं के लिये तो इन्हें पूर्ण त्याज्य ही कहा है। गृहस्थ के लिये भी भोगों की वृद्धि को हेय माना है और इन्हें सीमित मर्यादित रखने का विधान है।

जैन धर्म का मानना है कि उपभोगवादी संस्कृति ही समस्त दोषों व प्रदूषणों की जननी है। अतः जब तक संस्कृति का आधार उपभोग रहेगा तब तक प्रदूषण भी बना रहेगा। कारण कि किसी वस्तु का दुरूपयोग करने से ही प्रदूषण पैदा होता है। वस्तु के सदुपयोग से वस्तु का जितना उपयोग होता है उससे अधिक उसका उत्पादन होता है। उसका अनावश्यक व्यय (अपव्यय) नहीं होता है। भोगवादी संस्कृति पशुता की द्योतक है, पशु जीवन प्रकृति के आधीन है। पशु-पक्षी भूख लगने पर ही खाते



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं, भूख नहीं होने पर नहीं खाते हैं। इस प्रकार प्रकृति का संतुलन बना रहता है। परन्तु मनुष्य भूखा होने पर भी चाहे तो नहीं खाये और भूख न होने पर भी स्वाद के वश भोजन कर लेता है। अर्थात् मनुष्य का जीवन प्रकृति के आधीन नहीं है। वह प्रकृति से अपने को ऊपर उठाने में स्वतन्त्र है। यही मानव जीवन की विशेषता भी है। मानव इस स्वतन्त्रता का सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों कर सकता है। सदुपयोग है – प्रकृति का यथा संभव कम या उतना ही उपयोग करना जितना जीवन के लिये अत्यावश्यक है। इससे प्रकृति की देन का / वस्तुओं का व्यर्थ व्यय नहीं होता है और जिससे प्रकृति का संतुलन बना रहता है तथा प्रकृति के उत्पादन में वृद्धि होती है। भारतवर्ष की संस्कृति में अन्न को देवता माना गया है। अन्न के एक दाने को भी व्यर्थ नष्ट करने को घोर पाप या अपराध माना जाता रहा है। पेड़ के एक फूल, पत्ते व फल को व्यर्थ तोड़ना अनुचित समझा जाता रहा है। पेड़-पौधों को क्षति पहुँचाना तो दूर रहा उलटा उन्हें पूजा जाता है – खाद और जल देकर उनका संवर्धन व पोषण किया जाता है। यही कारण है कि आज से केवल एक सौ वर्ष पूर्व भारत में घने जंगल थे। जब से उपभोक्तावादी संस्कृति का पश्चिम के देशों से भारत में आगमन हुआ, प्रचार-प्रसार हुआ इसके पश्चात् सारे प्रदूषण पैदा हो गये, वनों का विनाश हो गया। अगणित वनस्पतियों तथा पशु-पक्षियों की जातियों का अस्तित्व ही मिट गया। जहाँ पहले सिंह भ्रमण करते थे आज वहां खरगोश भी नहीं रहे।

वर्तमान में विज्ञान के विकास के साथ भोग सामग्री अत्यधिक बढ़ गई है तथा बढ़ती जा रही है, जिसे फलस्वरूप रोग बढ़ गये हैं और बढ़ते जा रहे हैं। उदाहरणार्थ टेलिवीजन को ही लें, टेलिवीजन के समीप बैठने से बच्चों में रक्त कैंसर जैसा असाध्य रोग बहुत अधिक बढ़ गये हैं। आँखों की दृष्टि तो कमजोर होती ही है। टेलिवीजन के पर्दे पर जो चल-चित्र दिखाये जाते हैं उनमें प्रदर्शित अभिनेता-अभिनेत्री का नृत्य, गान, हाव-भाव वेशभूषा, व अन्य भोग-सामग्री से दर्शकों के मन में कामोद्दीपन तो होता ही है साथ ही मन में अगणित भोग भोगने की कामनाएँ/वासनाएँ उत्पन्न हो जाती है, उन सब की पूर्ति होना संभव नहीं है। कामनाओं/वासनाओं की पूर्ति न होने से तनाव, हीनभाव, दबाव, और द्वन्द्व, कुंठाएँ तथा मानसिक ग्रंथियों का निर्माण हो जाता है। जिससे व्यक्ति मानसिक रोगी होकर जीवन पर्यन्त दुख भोगता है साथ ही रक्तचाप, हृदय, केंसर, अल्सर, मधुमेह जैसे शारीरिक रोग का शिकार भी हो जाता है। **जैन धर्म का मानना है कि भोग स्वयं आत्मिक एवं मानसिक रोग है और इसके फलस्वरूप शारीरिक रोगों की उत्पति होती है। फिर शारीरिक रोगों की चिकित्सा के लिये एन्टीवायोटिक दवाइयाँ ली जाती हैं जिससे लाभ तो तत्काल मिलता है परन्तु जीवन-शक्ति नष्ट हो जाती है फलतः आयु घटकर अकाल में ही काल के गाल में समा जाते हैं, वर्तमान में उत्पन्न समस्त समस्याओं का मूल भोगवादी संस्कृति ही है।**

## ८. अनर्थ दण्ड विरमण

अनर्थ शब्द, अन् उपसर्ग पूर्वक दंड शब्द से बना है। अन् उपसर्ग के अनेक अर्थ फलित होते हैं उनमें मुख्य हैं अभाव, विलोम। अर्थ कहते हैं – मतलब को। अतः अनर्थ शब्द का अभाव में अभिप्राय है बिना अर्थ, व्यर्थ, हित शून्य और विलोम रूप में अभिप्राय है – हानि-प्रद। अतः जो कार्य अपने लिये हितकर न हो और दूसरों के लिये भी हानिकारक हो उसे अनर्थ दण्ड कहते हैं। जैसे मनोरंजन के लिए ऊँटों की पीठ पर बच्चों को बांधकर ऊँटों को दौड़ाना जिससे बच्चे चिल्लाते हैं तथा गिरकर मर जाते हैं, मुर्गी को व सांडों को परस्पर में लड़ाना आदि। आजकल सौंदर्य प्रसाधन सामग्री के लिये अनेक पशु-पक्षियों की निर्मम हत्याएँ की जाती हैं, इस



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार प्रसाधन सामग्री से पशुओं का वध तो होता ही है तथा सामग्री का उपयोग करने वाले के स्वास्थ्य को भी हानि पहुँचती है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जो स्वादिष्ट वस्तुएँ बनाती हैं उससे उन खाद्य-पदार्थों के विटामिन-प्रोटीन आदि प्रकृति प्राप्त पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं साथ ही उनका मूल्य बीसों गुना हो जाता है जो अर्थ को बहुत बड़ी हानि या दंड है अर्थात् अनर्थदण्ड है। **आज भोग-परिभोग के लिये जिन कृत्रिम वस्तुओं का निर्माण हो रहा है उन वस्तुओं के लाभकारी गुण या तत्व तो नष्ट हो ही जाते हैं साथ ही वे स्वास्थ्य तथा आर्थिक दृष्टि से हानिकारक भी होती है, अतः वे अनर्थदण्ड रूप ही हैं।** यही नहीं तली हुई चरपरी-चटपटी मिर्च, मसालेदार वस्तुओं को भी अनर्थदण्ड के रूप में लिया जा सकता है क्योंकि ये शरीर के लिये हानिकारक होती है, पाचन शक्ति बिगाड़ती है। आस्ट्रेलिया, यूरोप आदि देशों के विकसित नागरिक स्वास्थ्य के लिये ऐसी तली हुई, मिर्च मसालेदार हानिकारक वस्तुओं का उपयोग व उपभोग प्रायः नहीं करते हैं। सिन्थेटिक वस्त्र भी स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है इसलिये अब विदेशों में पुनः सूती वस्त्रों को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। जिससे इनकी मांग बढ़ी है। यदि अनर्थदण्ड विरमण व्रत का पालन किया जाय तो इन सब प्रदूषणों से बचा जा सकता है।

### ९. सामायिक १०. देशावकासिक ११. पौषधव्रत

ये तीनों व्रत मानसिक एवं आत्मिक विकारों/प्रदूषणों से बचने तथा गुणों का पोषण करने के लिये हैं। अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में समभाव से रहना, उनसे प्रभावित न होना, उसके प्रति राग-द्वेष न करना, मन का संतुलन न खोना **सामायिक** है। इससे व्यक्ति परिस्थिति से अतीत हो जाता है, ऊपर उठ जाता है। अतः सांसारिक सुख-दुख के प्रभाव से मुक्त हो जाता है फिर उसे तनाव, हीन भाव, अन्तर्द्वन्द्व, भय, चिंता जैसे मानसिक रोग या विकार नहीं सताते हैं।

**देशावकासिक व्रत** छठे दिशि तथा सातवें भोग-परिभोग परिमाण व्रत इन दोनों व्रतों का ही विशेष रूप है। छठे तथा सातवें व्रत में दिशा व भोग्य वस्तुओं की जो मर्यादा की है उसे प्रतिदिन के लिए घटाना इस व्रत का उद्देश्य है। **पौषध व्रत में सांसारिक प्रवृतियों से एक दिन के लिये विश्राम लेना है। इसमें साधुत्व का आचरण करना है। साधुत्व (त्याग) का रस चखना है। विश्राम से शक्ति का प्रार्दुभाव होता है, विवेक का उदय होता है, संवेदन-शक्ति का विकास होता है अर्थात् आत्मिक गुणों का पोषण होता है।**

### १२. अतिथि संविभाग व्रत

गृहस्थ जीवन में दान का बहुत महत्व है। **गृहस्थ जीवन का भूषण ही न्याय पूर्वक उत्पादन व उपार्जन करना तथा उसे आवश्यकता वाले लोगों में वितरण करना है। जो उत्पादन व उपार्जन नहीं करता है वह अकर्मण्य व आलसी है यह गृहस्थ जीवन के लिये दूषण है, इसी प्रकार जो उत्पादन करके संग्रह करता है वह भी दूषण है। गृहस्थ जीवन की सुंदरता व सार्थकता अपनी न्याय पूर्वक उपार्जित सामग्री से बालक, वृद्ध, रोगी, सेवक, संत महात्मा आदि उन लोगों की सेवा करने में है जो उपार्जन करने में असमर्थ है।**

जैन धर्म में तप का बड़ा महत्व है। तप में (१) अनशन २. ऊनोदरी-भूख से कम खाना। ३. आयंबिल-रस परित्याग आदि है। ये सभी तप भोजन से होने वाले प्रदूषणों को दूर करते हैं। अतिभोजन से तथा गरिष्ठ भोजन से भोजन पचने में कठिनाई होती है, जिससे पाचन-शक्ति कमजोर हो जाती है तथा भोजन में सड़ान्ध पैदा होती है जो गैस (वायु) बनाती है। जिससे अनेक रोग पैदा होते हैं। कहा जाता है कि सभी रोगों की जड़ उदर विकार है, पेट की खराबी है। यह पेट की खराबी तथा इससे संबंधित अगणित रोग उपवास, ऊनोदरी तथा



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयंबिल से मिट जाते हैं। रूस में तो सभी रोगों के लिये उपवास चिकित्सा संचालित ही है। पूज्य श्री घासीलालजी म.सा. ने हजारों रोगियों का रोग आयंबिल तप से ही दूर किया था। आयंबिल में एक ही प्रकार का विगय रहित भोजन किया जाता है जिससे जितनी भूख है उससे अधिक भोजन से बचा जा सकता है। एक ही रस के भोजन में आमाशय को अनजाईम बनाने में – जिनसे भोजन पचता है कठिनाई नहीं होती है, इसीलिये आस्ट्रेलिया निवासी प्रायः एक समय में एक ही रस का भोजन करते हैं यदि मीठे स्वाद की वस्तुएँ खाते हैं तो उनके साथ खट्टे नमकीन आदि स्वाद की वस्तुएँ नहीं खाते हैं। शारीरिक रोगरूप प्रदूषण को दूर करने की दृष्टि से तप का बड़ा महत्व है।

इसी प्रकार रात्रि भोजन त्याग, मांसाहार त्याग, मद्य त्याग, शिकार त्याग आदि जैन धर्म के सिद्धान्तों से शारीरिक, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक प्रदूषणों से बचा जा सकता है। लेख के विस्तार के भय से इन पर यहाँ विवेचन नहीं किया जा रहा है।

## उपसंहार

प्राणी के जीवन के विकास का संबंध प्राण शक्ति के विकास से है न कि वस्तुओं के उत्पादन से तथा भोग-परिभोग सामग्री की वृद्धि से। **आध्यात्मिक, शारीरिक, मानसिक, भौतिक, पारिवारिक, सामाजिक जगत् में पर्यावरणों में शक्ति का ह्रास या विनाश प्राप्त वस्तुओं के दुरुपयोग से, भोग से होता है क्योंकि भोग से ही समस्त दोष पनपते हैं जो प्रदूषण पैदा करते हैं और भोग के त्याग से, संयम मय मर्यादित जीवन से उपर्युक्त सभी क्षेत्रों में विकास या पोषण होता है। पर्यावरण प्रदूषण से बचे तथा पर्यावरण का समुचित पोषण हो, यही जैन धर्म के तत्त्वज्ञान का निरूपण है। इसी में मानव जीवन की सार्थकता व सफलता है।**

**❑ श्री कन्हैयालाल लोढ़ा सुविख्यात विद्वान्, लेखक एवं जैन दर्शन के गम्भीर व्याख्याता हैं। आप एक ध्यान साधक हैं तथा श्री जैन सिद्धांत शिक्षण संस्थान, जयपुर के अधिष्ठाता हैं। आपका जन्म वि.सं. १९९९ में धनोप (भीलवाड़ा) में हुआ। जैन दर्शन के विभिन्न आयामों पर आपने शताधिक चिंतनपूर्ण निबंध प्रस्तुत किये हैं। विज्ञान और मनोविज्ञान से सम्बन्धित आपकी पुस्तक "जैन धर्म दर्शन" पुरस्कृत हुई है। – सम्पादक**

वेष-व्यवस्था / संयम-यात्रा के निर्वाह और ज्ञान आदि साधना के लिए तथा लोक में साधक और संसारी के भेद को स्पष्ट करने के लिए है। यह व्यावहारिक साधन है। निश्चय में / तत्त्व दृष्टि से साधन-ज्ञान-दर्शन-चरित्र ही हैं।

**– सुमन वचनामृत**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org